40.

तित्थयर

जैन भवन

वर्ष ६ अंक ११ : मार्च १९८३

बनारसी साड़ी

इण्डियन सिल्क हाउस

कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

Prakash Trading Company

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram: PEARLMOON

Telephone : 22-4110
22-3323

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Mir Bhor Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office :

The Bikaner Woollen Mills
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र
वर्ष ६ : अंक ११
मार्च १९८३

☐

संपादन
गणेश ललवानी
राजकुमारी बेगानी

☐

आजीवन : एक सौ एक
वार्षिक शुल्क : दस रुपये
प्रस्तुत अंक : एक रुपया

☐

प्रकाशक
जैन भवन
पी - २५ कलाकार स्ट्रीट
कलकत्ता-७००००७

☐

मुद्रक
सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स
२०५ रवीन्द्र सरणी
कलकत्ता-७००००७

सूची

धातुमय जैन प्रतिमाएँ ३२५
ललितांग देव ३३३
त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र ३४१
अर्द्धकथानक ३४६
जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या ३५२

तित्थयर

संवादपत्र रजिस्ट्रेशन (केन्द्रीय) विधि के (१९५६) ८ नं० धारा के अनुसार प्रदत्त विवृति :

प्रकाशन स्थान : कलकत्ता

प्रकाशन अवधि : मासिक

मुद्रक का नाम : गणेश ललवानी (भारतीय)

ठिकाना : पी० २५ कलाकार स्ट्रीट
कलकत्ता-७

प्रकाशक का नाम : गणेश ललवानी (भारतीय)

ठिकाना : पी० २५ कलाकार स्ट्रीट
कलकत्ता-७

सम्पादक का नाम : गणेश ललवानी (भारतीय)

ठिकाना : पी० २५ कलाकार स्ट्रीट
कलकत्ता-७

स्वत्वाधिकारी का नाम : जैन भवन

ठिकाना : पी० २५ कलाकार स्ट्रीट
कलकत्ता-७

मैं, गणेश ललवानी, घोषणा करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरे ज्ञान एवं विश्वासानुसार सत्य है।

गणेश ललवानी
प्रकाशक का हस्ताक्षर

१५-३-८३

धातुमय जैन प्रतिमाएँ

श्री भँवरलाल नाहटा

[पूर्वानुवृत्ति]

श्री महावीर जिनालय (आसानियों का चौक)

यहाँ सं १३६० में ज्ञानचंद्र सूरि प्रतिष्ठित मल्लिनाथ भगवान का धातुमय सिंहासन है ।

श्री गौड़ी पार्श्व जिनालय

यहाँ सं० १२७८ में प्रतिष्ठित रूधरिका देवी की प्रतिमा है ।

चूरू डिवीजन के तारानगर के प्राचीन जिनालय में सं० १०५८ की प्रतिष्ठित शीतलनाथ भगवान की धातु प्रतिमा अत्यन्त सुन्दर व कलापूर्ण है । सुजानगढ़ के मन्दिर में चांदी की थाली में घण्टाकर्ण प्रतिष्ठित है । देशनोक के भूरों के वास की धातुमय मूलनायक प्रतिमा शान्तिनाथ स्वामी बीकानेर में ही निर्मापित है ।

जेसलमेर में हजारों जिन प्रतिमाएँ हैं जिनमें धातुनिर्मित भी संख्याबद्ध व कलापूर्ण हैं । शान्तिनाथ मन्दिर की मूलनायक प्रतिमा सं० १५३६ की प्रतिष्ठित है । गजारूढ़ श्रावक प्रतिमा सा० खेता के पुत्र की है जो सं० १५६० की निर्मापित है । चन्द्रप्रभ जिनालय में एक प्रतिमा सं० १०८६ की है जिसमें नागेन्द्र सिद्धसेन दिवाकराचार्य के गच्छ का लेख है । लौद्रवा जी में सं० १६७३ का माया बीज यंत्र व धातुमय विशाल कल्पवृक्ष प्राचीनता व कला की दृष्टि से अद्भुत वस्तु है ।

जोधपुर के सन्निकट गांगाणी तीर्थ है जहाँ सं० १६६२ में एक तलघर से लगभग ६० प्रतिमाएं निकली थीं जिनमें सम्राट सम्प्रति और चन्द्रगुप्त द्वारा निर्मापित प्राचीनतम् लेख युक्त प्रतिमाएँ थीं । उस जमाने में प्राचीन लिपि का अभ्यास न होने पर भी विद्वान जैनाचार्य श्री जिनराजसूरिजी ने अम्बिका देवी की सहायता से पढ़ी थी । उन प्रतिमाओं में एक अर्जुनहेम (प्लेटिनम) की भी पार्श्वनाथ प्रतिमा की आश्चर्यजनक उपलब्धि हुई थी । कविवर समयसुन्दर जी ने अपने स्तवन में इसका विस्तृत वर्णन किया है । उसके साथ कुछ अन्य प्रतिमाएं, धूपदान, कंसात जोड़ी आदि उपकरण भी निकले थे ।

अब, वे प्रतिमाएं कहाँ हैं और कब छिपा दी गईं, पता नहीं। परन्तु अब भी गांगाणी के मन्दिर में सं० ६३७ के अभिलेख वाली ऋषभ देव भगवान की अत्यन्त सुन्दर कलापूर्ण प्रतिमा विराजित है जिसका परिकर कहीं भण्डार में हो सकता है।

जोधपुर के मन्दिर में भी कई सुन्दर कलापूर्ण विविध प्रकार की प्रतिमाएं हैं। साचोर, भीनमाल, जालोर आदि प्राचीन स्थान कलापूर्ण प्राचीन मूर्त्तियों के लिए पर्याप्त प्रसिद्ध थे।

नागोर के बड़े मन्दिर में धातुप्रतिमाएं पर्याप्त प्राचीन और कलापूर्ण भी हैं। एक मन्दिर के सभामण्डप में कलापूर्ण समवसरण मेरु पर्वत देखा था जो लगभग ३५-४० इंच ऊँचा होगा। नागौर जैसे प्राचीन नगर में दिगम्बर व श्वेताम्बर मन्दिरों में कलात्मक उपादानों के विषय में अन्वेषण अपेक्षित है। मुस्लिम काल से पूर्व नागौर के जिनालयों की जो संख्या व स्थिति थी, प्राचीन स्तवनादि से विदित होता है कि धातुमय तोरण व परिकर युक्त विशाल प्रतिमाओं की अवस्थिति थी। राजस्थान व गुजरात के प्रत्येक नगर में प्राप्त धातु प्रतिमाओं में कुछ न कुछ कला वैशिष्ट्य मिलता ही है। केशरियाजी तीर्थ में चौबीसी विधा की एक धातुमय प्रतिमा में अतीत, अनागत और वर्तमान चौबीसियों के बहत्तर जिनबिंब अवस्थित हैं।

सिरोही के कलापूर्ण मन्दिर विख्यात हैं जहाँ आस-पास के अनेक गाँवों में सहस्राब्द पूर्व के मन्दिर विद्यमान हैं। बसन्तगढ़ की दुर्लभ प्रतिमाएं भी पिण्डवाड़ा के जैन मन्दिर में होने का उल्लेख आगे किया जा चुका है। सिरोही के सभी मन्दिरों में कलापूर्ण प्राचीन प्रतिमाएँ हैं। श्री अजितनाथ जिनालय में १७२ धातुमय जिन प्रतिमाएं हैं तथा उसके आगे वाम पार्श्व में पुरातत्व मन्दिर है जिसमें दशवीं शती से लेकर सोलहवीं शती तक की ५४० प्रतिमाएं सुरक्षित हैं। आदिनाथ जिनालय के अन्तर्गत सुमतिनाथ जी के गंभारे के भूमिगृह में १००० धातु प्रतिमाएं १२ वीं से १४ वीं शती तक की हैं। इस मन्दिर में २६३ सर्व धातु की व ५ रजतमय प्रतिमाएं हैं। शान्तिनाथ मन्दिर में ३३ धातु प्रतिमाएं हैं। अन्य सभी मन्दिरों में अनेक धातु प्रतिमाएं हैं।

आबू अचलगढ़ तो अपनी शिल्प समृद्धि के लिए विश्व विख्यात है। विमल प्रबन्ध से ज्ञात होता है कि विमलवसही में मूलनायक प्रतिमा भी पित्तलमय थी। यतः—

॥ वस्तु ॥ "विमलवसही विमलवसही विमल प्रासाद
पित्तलमइ अढार भारनी आदिनाथ प्रतिमा प्रसिद्धी
संवत् १०८८ वर प्रतिष्ठ शुभ लग्नि कीधी।"

अचलगढ़ में विशाल जिन प्रतिमाएं १४४४ मन तौल की हैं जिनमें स्वर्ण का भाग भी अच्छे परिमाण में है। आबू की भीमावसही जिसे पित्त-लहर कहते हैं, में सुन्दर और कलापूर्ण विशाल मूलनायक प्रतिमा विराजित है।

जैन धातु प्रतिमाएं अनेक विधाओं की पायी जाती हैं एवं अन्य उपादान भी बहुत रकम के उपलब्ध हैं जिन पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जाता है।

अष्ट दल कमल

लगभग चार सौ वर्ष से अष्टदल कमल युक्त प्रतिमा निर्माण के उदाहरण बीकानेर आदि में देखे गए हैं। बीकानेर, सिरोही आदि में प्रतिष्ठित ऐसी प्रतिमाओं के मध्य स्थित कर्णिका पर एक जिन प्रतिमा और उसके आसन के निम्न भाग से भिन्न-भिन्न अष्ट दल—पंखुड़ियाँ पिरोकर संलग्न किए रहते हैं जिन में आठ भगवान की आठ प्रतिमाएं बनी रहती हैं। उन्हें बन्द करने पर बन्द कमल और खोल देने पर विकसित कमलाकार में मध्य वेदी सहित नौ प्रतिमाओं के एक साथ दर्शन हो जाते हैं। दिल्ली के नौघरा मन्दिर में इस विधा का एक और विकसित रूप देखा गया है जिसमें डबल स्तर में अत्यन्त सुन्दर ढंग से जिन बिम्ब-नवपदादि बने हुए हैं। बीकानेर में अकबर प्रतिबोधक श्री जिनचन्द्रसूरि प्रतिष्ठित कई प्रतिमाएं हैं पर श्री जयचंदजी के भंडार में सं० १८९५ में महाराजा रणजीत सिंह के राज्यकाल में पिण्डी में प्रतिष्ठित एक ऐसी प्रतिमा है। हमारे शंकरदान नाहटा कला भवन में एक स्वर्णमय कमल है जिस के बीच में हाथी दाँत की जिन प्रतिमा है। दबाने पर कमल विकसित हो जाता है।

सिद्ध प्रतिमा

अर्हन्त भगवान तो सशरीरी होते हैं पर सिद्ध भगवान तो अरूपी आत्म-प्रदेश मात्र हैं। उनका रूप चित्रण कैसे हो ? इस समस्या का समाधान दिगम्बर परम्परा में निकाला गया और पीतल-रजत आदि धातु के पात को खड्गासन काट कर मध्य मे केवल अवगाहना त्रिभाग घनीभूत आत्मप्रदेश का प्रतीक आकाश प्रदेश खाली रख दिया गया। यह सिद्धमूर्त्ति के दर्शन की विधा केवल दिगम्बर जिनालयों में ही दृष्टिगोचर होती है। श्वेताम्बर समाज ने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया।

गणधर प्रतिमा

कलकत्ता मन्दिर में १६ वीं शती की दो धातुमय गौतम स्वामी जी की प्रतिमाएँ हैं। गत शताब्दी में पुण्डरीक स्वामी की प्रतिमा बनवा कर प्रतिष्ठित करवायी थी। उसी समय दादा साहब के चरण भी कमलासन पर बनवाकर राजलदेसर मन्दिर में भेजे गए थे।

इन्द्र प्रतिमा

इन्द्र की चामरधारी प्रतिमाएं तो पंचतीर्थी आदि में प्रचुर परिमाण में हैं पर भगवान के जन्माभिषेक समय की एक प्रतिमा पद्मासन मुद्रा में है जिसके गोद में एक छिद्र है जिसमें भगवान की एक प्रतिमा बैठाकर अभिषेक करने हेतु निर्मित प्रतीत होती है। इन्द्र प्रतिमा के मस्तक पर मुकुट कुण्डलादि देख कर जीवित स्वामी की प्रतिमा होने का भ्रम होता है। ऐसी प्रतिमा राय बद्री दास कारित शीतलनाथ जिनालय के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं देखी गई।

विजय यंत्र

आचार्य श्री जिनप्रभ सूरि द्वारा विजय यंत्र का प्रत्यक्ष प्रभाव अनुभव कर सम्राट मुहम्मद तुगलक ने दो ताम्रमय यंत्र बनवाकर एक आचार्यश्री को भेंट किया व दूसरा स्वयं हरदम अपने पास रखने लगा था।

नौ ग्रह दश दिग्पाल पट्ट

सिद्धचक्र विधानादि में मण्डल पूजा में ताम्र के नौ ग्रह दश दिग्पाल के बड़े बड़े पट्ट बनते हैं जिनमें उनके नमस्कार पूर्वक नाम व प्रतीक खुदे रहते हैं। कई मन्दिरों में ऐसे पट्ट पाये जाते हैं।

अष्टमंगल

प्राचीन शास्त्रों में, पूठों पर चित्रों में और शिल्प में अष्ट मंगल प्रचुरता से पाये जाते हैं। सतरह भेदी पूजा में भगवान के समक्ष अखंड चावलों से अष्ट मंगल आलेखित करने का उल्लेख है पर वह कार्य कठिन होने से चांदी और पित्तल कांस्य के अष्ट मंगल पट्ट भी सिद्धचक्र यंत्रादि की भाँति प्रत्येक मन्दिर में पाये जाते हैं। पाटे पर खुदे हुए अष्ट मंगल चावलों से पूरे जा सकते हैं पर आजकल इस चढ़ाने के उपादान को पूजनीय समझ कर लोग इनकी पूजा करने लगे हैं जो उचित नहीं।

घंटाकर्णयंत्र पट्ट

ताम्रपत्र पर घण्टाकर्ण पूजा के यंत्र और मंत्राक्षरादि वाले पट्ट भी पाये जाते हैं। हमारे कलाभवन में एक ताम्रपट्ट संग्रहीत है।

नवपद-सिद्धचक्र यंत्र

जैन समाज में चैत्र-आसोज के अन्तिम नौ दिनों में आयंबिल पूर्वक नवपदों का आराधन किया जाता है जिसे ओली जी कहते हैं। मन्दिरों में नवपद मण्डल की रचना होकर विधि विधान पूर्वक वृहत् पूजा भणाई जाती है। सिद्ध-चक्र यंत्र गट्टाजी तो स्नात्र पूजादि में नित्य ही पूजे जाते हैं। धातुमय सिद्धचक्र यंत्र चांदी-पीतल और कांस्यमय प्रचुर परिमाण में उपलब्ध हैं जिनमें कइयों में केवल नाम और कइयों में प्रतिमाएं उत्कीर्णित पायी जाती हैं। पाषाण पटों की भाँति धातु यंत्रों पर भी इस विद्या का वैविध्य प्राप्त होता है। ढले हुए धातुमय यंत्र अजीमगंज के दूगड़ परिवार द्वारा शताब्दी पूर्व प्रचुर परिमाण में निर्मित हुए थे जिनमें अक्षर खुदे हुए नहीं पर ऊपर उठे हुए हैं। सिद्धचक्र मंडल के बहुत बड़े-बड़े पट्ट भी पाये जाते हैं। कलकत्ता के श्वे० पंचायती मन्दिर में एक वृहत् आकार का पट्टक है। इसमें मण्डल पूजन के सारे विधान विधिवत् बने हुए हैं।

नव देवता

जिनकांची के मन्दिर में एक यंत्र और द्वितल पादपीठ स्थित कमलासन पर मध्य में नृसिंह और उभय पक्ष में बने सिंहों पर चक्र में अष्टदल युक्त सुन्दर यंत्र बना हुआ है। मध्य में अरिहंत ऊपर सिद्ध फिर आचार्य, उपाध्याय, साधु के अतिरिक्त दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप के प्रतीक स्वरूप जिनालय, ठवणी पर शास्त्र धर्मचक्र व तपस्वी मुनि के चित्र उत्कीर्णित हैं। अर्हन्त भगवान के उभय पक्ष में चामर रखे हुए हैं।

चतुर्मुख प्रासाद

मुनिश्री पुण्यविजय जी के संग्रह में धातु का एक अत्यन्त सुन्दर परिकर है जो सं० १६१६ का है। इसकी कलापूर्ण अभिव्यक्ति प्रशंसनीय है। पृष्ठ भाग में विस्तृत अभिलेख है जिसमें पूर्णिमा पक्ष के विद्याप्रभ सूरि द्वारा प्रतिष्ठा कराने व पाटण के ढंढेर पाड़े के श्रीमाल ज्ञातीय श्रावक परिवार के पद्मप्रभ बिंब निर्माण करने का उल्लेख है। इसकी मूल प्रतिमा अब नहीं है। एक छोटा-सा धातुमय जिनालय है जो चारों ओर खुला है। इसमें चतुर्मुख प्रतिमाएं विराजमान रही होंगी। इस देहरासर का शिखर अत्यन्त कलापूर्ण है। सं० १४६२ में इस चतुर्मुख प्रासाद को सा० धर्मा द्वारा स्वर्ण रौप्य से अलंकृत कराने और संघ द्वारा निर्माण कराने का उल्लेख है। यह भी मुनि पुण्यविजयजी के संग्रह में है।

सूरत के दिगम्बर जिनालय में एक कांस्य का चतुर्मुख जिनालय भी धातु प्रतिमाओं की विधाओं में अपना वैशिष्ट्य रखता है। इसमें चतुर्दिक तेरह प्रतिमाएँ, जिनमें एक खड्गासन और बारह पद्मासनस्थ प्रथम तल में इस प्रकार ५२ हुई। द्वितीय तल में सोलह, तृतीय तल में चौमुख इस प्रकार ७२ प्रतिमाएं कलापूर्ण स्तम्भ व तोरण युक्त सुशोभित है।

नन्दीश्वर द्वीप

कोल्हापुर के जिनालय में एक धातुमय नन्दीश्वर बिम्ब स्थापित है। जिसमें चौरस चतुर्मुख प्रथम तल पर २०, द्वितीय तल पर १६, तृतीय तल पर १२ और चतुर्थ तल पर ४ जिनबिम्ब है। प्रतिमाएं पद्मासन मुद्रा में हैं और ऊपर शिखर कलश युक्त है।

सहस्रकूट जिनालय

पाटण नगर में कांस्य का सहस्रकूट जिनालय अत्यन्त सुन्दर कलापूर्ण है। यह सर्वतोभद्र की भाँति चतुर्मुख और पर्याप्त ऊंचा है। नीचे बारह पर्षदा और सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। ऊपर की तीन मंजिल में चतुर्दिग् १००८ जिन प्रतिमाएं हैं, चारों कोनों में चामरधारी और मकरमुख आदि अलंकरण हैं, ऊपर कलश लगा हुआ है।

नरवर का सहस्रकूट बिम्ब इस समय झांसी के जिनालय में है। यह धातुमय ढला हुआ चार-साढ़े चार फुट ऊंचा नौ भागों में विभाजित खण्डों को जोड़ कर बनाया गया है। मध्य स्थित प्रतिमा ८ इंच की है, अवशिष्ट एक-डेढ़ इंच की है। समस्त प्रतिमाएं १००२ हैं और सं० १५१५ शक १५०६ (?) भट्टारक धर्मभूषण के उपदेश से निर्मित हैं। ऊपरी भाग में पीतल का सुन्दर कलश है।

समवसरण

सूरत के जैन मन्दिर में एक धातुमय समवसरण अत्यन्त सुन्दर, कलापूर्ण और दर्शनीय है। इस विशाल समवसरण को नीचे चौरस कलापूर्ण आसन पर वृत्ताकार तीन गढ़ और बारह पर्षदा वाला बनाया है। यह सन् १०५५ का बना हुआ है। इसके प्रतोली द्वार, तोरण और विशिष्ट प्रकार का शिखर भी बेजोड़ है।

पंच मेरु

यह भी सूरत के दि० जैन मन्दिर में पाँचों द्वीपों के पांच मेरु के प्रतीक रूप पाँच तलों में अत्यन्त सुन्दर कलामय अभिव्यक्ति वाला बेजोड़ बना हुआ है।

ताम्रशासन

तीर्थों-मन्दिरों आदि के लिए राज्य की ओर से, जो भूमिदान आदि किये जाते थे, उनके अनेक ताम्रशासन संस्कृत, प्राकृत व राजस्थानी भाषा में लिखे हुए उपलब्ध हैं। बंगाल के ब्राह्मण गुहनन्दि द्वारा पहाड़पुर के जैन मन्दिर-मठ को दिया गया ताम्र शासन पाँचवीं शताब्दी का है। विक्कमपुर का एक ताम्रशासन जेसलमेर में देखा था। बीकानेर के ज्ञान भंडार में नाल दादाजी की पूजा के हेतु प्राप्त राजकीय ताम्रशासन है। हमारे कला भवन में भी एक ताम्र शासन है।

रजतमय समवसरणादि

बड़ौदा के नरसिंहजी की पोल में स्थित दादा पार्श्वनाथ जिनालय में एक चांदी का विशाल समवसरण है। इसी प्रकार भारत के प्रत्येक नगर में विपुल सामग्री संप्राप्त है। कलकत्ता के पंचायती मन्दिर से जो विश्व विश्रुत कार्त्तिक महोत्सव की शोभायात्रा में धर्मनाथ स्वामी का जो समवसरण निकाला जाता है वह सं० १८९३ में हेमल्टन कम्पनी द्वारा बनवाया गया था। हेम रजत व मणियों से सुशोभित एवं मखमल जरी के अलंकरण युक्त यह अद्भुत कला कृति है। इसके अतिरिक्त अन्य छोटे समवसरण, नौबत खाना, पट, लेश्या वृक्ष आदि अनेक कलामय वस्तुएं हैं। फूलधरा, पालने, ध्वजाएं, त्रिगढे एवं सिंहासनादि सामग्री जैन मन्दिरों में प्रचुर परिमाण में हैं। उपर्युक्त समवसरण के अनुकरण में कलाप्रेमी श्री भैरूंदान जी कोठारी द्वारा बनवाया हुआ समवसरण बीकानेर में भी है। भारत के अनेक जिनालयों में समवसरण, कल्पवृक्ष, रथ, देवालय, सिंहासन, चतुर्दश महास्वप्नों के सेट आदि निर्माण द्वारा कला को काफी प्रोत्साहन मिला है। भगवान की अंगियाँ स्वर्ण, रजत और रत्नजटित में भी कला का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। रजतमय प्रतिमाएं अनेक भाग्यशालियों ने निर्माण कराई थीं। मकसूदाबाद के दूगड़ परिवार ने शताब्दी पूर्व बहुत सी रजतमय प्रतिमाएं निर्माण कराई थी जो आज भी संप्राप्त है। नाकोड़ा जी की मूलनायक प्रतिमा का परिकर रजतमय है। मन्दिरों की वेदियां, कपाट, सिंहासन, वंदरवाल आदि अनेक मन्दिरों में विद्यमान हैं।

उपसंहार

इस प्रकार धातु प्रतिमाओं के विराट विहंगावलोकन से प्रमाणित है कि प्रतिमादि निर्माण में धातुओं का प्रयोग अति प्राचीनकाल से होता आया है। मथुरा के देव निर्मित बौद्ध स्तूप स्वर्ण रत्नमय धातु निर्मित थे। धंधाणी में

निकली हुई सम्प्रति-चन्द्रगुप्त कालीन प्रतिमाएं, बम्बई म्यूजियम की कांस्य प्रतिमा, आकोटा की जीवित स्वामी आदि की प्रतिमाएं वल्लभी, महुड़ी, वसंतगढ़, बीकानेर आदि की गुप्तकालीन शिल्प परम्परा युक्त प्रतिमाएं, बंगाल, उड़ीसा, बिहार से प्राप्त प्रतिमाओं में कुषाण, गुप्त, पाल और मध्यकालीन शिल्पमय पंचतीर्थियाँ, चौबीसी, त्रितीर्थी, अपरिकर इकतीर्थी आदि कला का विकास, उसमें विभिन्न देवी-देवता, भक्त गणादि का प्रवेश अपने आप में एक विशिष्ट अध्ययन की सामग्री है। विशाल से विशालतम और लघु से लघुतम प्रतिमाएं तथा समवसरण, सहस्रकूट, मेरुगिरि आदि शिल्प व यंत्र पटादि विधाएं मथुरा के आयागपट्ट की परम्परा को उजागर करने में सक्षम है। शिल्प शास्त्र वास्तुविद्या विषयक ग्रन्थों से इस विषय में अध्ययन प्रस्तुत करना एक स्वतंत्र शोध का विषय है। इससे प्राचीन भारत के सांस्कृतिक व धार्मिक पूजा उपासना के अध्याय पर गम्भीर और मनोरंजक प्रकाश पड़ सकता है। यहाँ कुछ थोड़ी-सी यथाज्ञात सामग्री पर संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। आशा है विद्वान लोग इस उपयोगी विषय के शोधार्थ में सविशेष प्रवृत्त होंगे।

ललितांग देव

[जैन कथानक]

[पूर्वानुवृत्ति]

पीछे की घटनाओं को सोचते ही दीपशिखा-सी एक आलोकवर्त्तिका को महाशून्य से मर्त्यलोक की ओर दौड़ते हुए देखा।

धीरे-धीरे एक ग्राम के सीमान्त का दृश्य मेरी आँखों में उभरा। मुझे एक जीर्ण-शीर्ण कुटिया दिखाई पड़ी। कुटिया के सन्मुख वन्यलता एवं कुछ स्वतः परिवर्द्धित करवी की झाड़ियाँ अवस्थित थीं। उन झाड़ियों से निकल कर कई वन्य कुक्कुट इधर-उधर चरते हुए घूम रहे थे। उस कुटिया के समीप एक पल्वल पूर्ण वापी थी। उस वापी के तट पर वन्य शूकर इच्छानुसार विचरण कर रहे थे।

सहसा उस कुटी से दरिद्रता की साक्षात् मूर्त्ति-सी एक रमणी निकली। न उसमें रूप था न यौवन। मस्तक के केश रूक्ष और सन की रस्सी से विस्रस्त होकर इधर-उधर लटक रहे थे। देह पर थे अर्द्ध छिन्न मलिन वसन। उदर था कुछ स्फीत। उसने इधर-उधर देखा—फिर वापी की ओर बढ़ गयी। देखा, उस नदी के किनारे एक प्रौढ़ कन्दमूल की खोज में धरती खोद रहा था। रमणी के कर्कश स्वर को सुनकर वह क्षणित्र छोड़कर खड़ा हो गया। वह मनुष्य भी दारिद्र्य की साकार क्षुधा-सा ही लग रहा था। क्रमशः मैं उसे और स्पष्टतया देखने लगा। उसके क्षुधार्त्त शरीर की शिराएँ इस प्रकार उभर रही थीं मानो उसकी देह को ज्वलन्त स्तम्भ समझकर गिरगिटें उस पर चढ़ बैठी हों। सारा शरीर क्षत चिह्नों से इस तरह भरा था जैसे अलक्ष्मी देवी ने ही उसकी देह के शुभ चिह्नों को काट-काट कर अलग कर दिया हो।

रमणी कह रही थी—"यदि तुम अन्न की व्यवस्था भी नहीं कर सकते थे तो विवाह ही क्यों किया? फिर एक के बाद एक इन छः कन्याओं को भी क्यों पैदा करवाया? देख रहे हो मैं पुनः गर्भवती हूँ?"।

उस बेचारे पर तो यह सुनकर मानों वज्रपात ही हो गया। बोला—"इसबार भी यदि लड़की हो गयी तो?"

"वह मैं क्या जानूँ ?"—स्त्री ने कहा ।

"तुम नहीं जानती तो क्या मैं जानता हूँ ?"—कहता हुआ वह वहाँ से खिसकने का उपक्रम करने लगा । तभी उस स्त्री ने उसका वस्त्रछोर पकड़ लिया । बोली—"अरे ओ वीर पुरुष, कुकृत्य करते समय तो कुछ ध्यान नहीं आया और अब भाग रहे हो ?"

तदुपरान्त दोनों के मध्य झगड़ा शुरु हो गया । वे एक दूसरे को कुत्सित गाली-गलौज देने लगे । मैं तो यह सब कुछ भी नहीं समझ पाया । अतः सप्रश्न दृष्टि से दृढ़धर्मा की ओर देखने लगा ।

दृढ़धर्मा बोला—"आपकी स्वयंप्रभा देवी श्रीप्रभ विमान से च्युत होकर धातकी खण्ड में पूर्व विदेह के नन्दीग्राम में नागश्री के गर्भ में उत्पन्न हुई है । आपने अभी जिस रमणी को देखा वही नागश्री है । और वह पुरुष है नागश्री का पति नागिल । उसी के औरस से स्वयंप्रभा नागश्री के गर्भ में आयी है । नागिल महा दरिद्र है । उदरपूर्ति के लिए वह दिन भर भूत की तरह भटकता फिरता है । फिर भी पेट नहीं भर पाता । वह क्षुधा लिए ही सोता है क्षुधा लिए ही जागता है । फिर दरिद्र की क्षुधा की भाँति नागश्री भी एकदम भाग्य हीन है । मानों विधाता ने एक दूसरे के अनुरूप ही सृजन किया है तभी तो छः-छः कन्याओं को जन्म देने के बावजूद भी वह पुनः गर्भवती हो गयी है । इसकी छओ कन्याएँ भी अपनी माँ की तरह ही भाग्यहीन हैं । उनमें न है रूप न है श्री । वे भी अन्न के लिए वन्य शूकरियों की भाँति दिन भर भटकती फिरती हैं ।"

सुनकर मैं मर्माहत हो गया । सोच ही नहीं पाया मेरी वह अनिद्य सुन्दरी स्वयंप्रभा किसलिए इस कुत्सित कलहमयी नागश्री के गर्भ में उत्पन्न हुई है । उस कमनीयता की प्रतिमूर्ति अत्यन्त धवल प्रभापुंज ने ऐसा कौन-सा पाप किया था जो विधाता ने उसे महादरिद्रों के बीच ढकेल दिया या पूर्व में ऐसा कौन-सा पुण्य किया था जो ईशान कल्प के श्रीप्रभ विमान में पट्ट महादेवी के रूप में वह उत्पन्न हुई थी । विद्युत प्रकाश के पश्चात् अन्धकार की भाँति अब वह इस पंकिल आवर्त्त में क्यों निक्षिप्त हुई ? कर्म की गति अत्यन्त गहन है । इसके रहस्य को कौन भेद सका है ? देख रहा हूँ असहाय तृण-खण्ड की भाँति समग्र जीवगण इस संसार के प्रवाह में निरन्तर प्रवाहित हो रहे हैं । इस जीवन में जो प्रबल प्रतापशाली और ऋद्धि-सम्पन्न है परवर्ती जीवन में वह सत्वहीन महादरिद्र भी हो

सकता है। आज मैं ईशान कल्प के श्रीप्रभ विमान का अधिपति हूँ। विश्व के समस्त सुख समस्त सम्पदाएँ मेरे पदतल में हैं। किन्तु कल जब मेरा आयुष्य समाप्त हो जाएगा तब इस श्रीप्रभ विमान से च्युत होकर हो सकता है मैं भी स्वयंप्रभा की भाँति किसी महा-दरिद्र के घर जन्म ग्रहण करूँ। उसदिन यह मेरा रूप वैभव कुछ भी नहीं रहेगा। मुझे भी हो सकता है सामान्य अन्न के लिए नागिल की तरह ही दिन भर पथ-विपथ में भटकना पड़े। मेरा सिर कैसे-कैसे तो घूमने लगा। हाथ पाँव शिथिल होने लगे। एक महातमिस्रा मानों मुझे ग्रसने के लिए उद्यत हो गयी। तब लगा कि मनुष्य जो जातिस्मर होकर नहीं जनमता है यह शाप नहीं वर है। जिस दिन मैं भी ईशान कल्प के श्रीप्रभ विमान से च्यव कर मृत्युलोक में जन्म ग्रहण करूँगा उस दिन इस रूप और वैभव की कोई भी स्मृति मेरे मन में नहीं रहेगी। यदि रह पाती तो इसके दुर्भर भार से मेरा जीवन विषाक्त हो जाता।

किन्तु एक बात मेरे मन में बैठने लगी—रूपलावण्य प्रभाव प्रतिपत्ति और वैभव का, अन्तिम निष्कर्ष में कोई मूल्य नहीं है बल्कि इन्हीं के लिए मनुष्य काम क्रोध लोभ और मोह के वशवर्त्ती होकर अनवरत हाहाकार करते रहते हैं। वे समझकर भी नहीं समझते, जानकर भी नहीं जानते।

सहसा नवजातक का क्रन्दन शब्द सुनाई पड़ा। वह शब्द उसी कुटी के भीतर से प्रवाहित होकर आ रहा था। नागिल दरवाजे की ओर मुख किए खड़ा था। उसने पूछा—"पुत्र हुआ या कन्या ?"

"कन्या।"

यह सुनते ही नागिल क्षणमात्र भी वहाँ खड़ा न रहकर उद्‌र्ध्वश्वांस लेता हुआ भागा। वन जंगलों को पार करता हुआ वह भागता ही गया। क्योंकि उसे भय था कहीं नागश्री उसके पीछे-पीछे आकर पकड़ न ले। किन्तु नागश्री की अवस्था उस समय भागकर उसे पकड़ने की नहीं थी। फिर भी नागिल दौड़ता रहा। उसने पीछे फिर कर भी नहीं देखा। स्वग्राम में कभी न आने की प्रतिज्ञा कर वह एक वन में अदृश्य हो गया।

नवजातिका का आरक्त, क्रन्दन के कारण आंकुचित कृष्णमुख मेरे नेत्रों के सम्मुख उभरा। दृढ़धर्मा ने कहा—"यह है आपकी स्वयंप्रभा।"

मैंने नेत्रों को आवृत किया। मेरे अन्तर की गहराई में जो भाव तरंगें उठ रह थीं उसका यथावत् विश्लेषण करना असम्भव है। वह वेदना थी या वितृष्णा, विषाद था या करुणा कह नहीं सकता। केवल एक

दीर्घ निःश्वास मेरे अन्तर के अन्तःस्थल से निकली। मेरी उस हंसवत् धवल वर्णा स्वयंप्रभा की इस परिणति ने मुझे खिन्न कर दिया था। उसका रुदन मैं तब भी सुन रहा था। वह रुदन क्या सर्वसुखप्रद श्रीप्रभ विमान से च्युत होने के लिए था या जो निष्ठुर भविष्य मर्त्य की धरती पर उसकी अपेक्षा कर रहा है उसके लिए था? मैं एकदम विकल हो उठा। किसी की भी संगति किसी के साथ बैठा नहीं सका। तभी देखा—एक शृगाल कुटिया के सामने आकर खड़ा हो गया और एक क्षुद्र बालिका उसे डाँटती हुई भगा ले गयी। शायद वह नागिल की कोई कन्या होगी। उस समय सूर्य अस्त हो गया था। पृथ्वी पर सर्वत्र एक अन्धकार छाया था। उस अन्धकार में अजस्र नक्षत्र झिलमिल कर रहे थे। मानों जुगनुओं का एक झुण्ड रात्रि के निस्तब्ध अन्धकार में जल रहा है बुझ रहा है।

पुनः दृश्यपटल परिवर्तित हुआ। नहीं जानता उस महा दारिद्रय के मध्य स्वयंप्रभा कैसे जीवित थी। कैसे नागिला के शीर्ण स्तन दुग्ध-धार से उच्छ्वसित हो उठे थे। किन्तु देखा सप्त वर्षीया बालिका निर्नामिका गोबर उठाती हुई मोदक की दुकान के सम्मुख आ खड़ी हुई। वहाँ अन्य बालक-बालिकाओं को मोदक खरीद कर खाते देख उसके मन में भी मोदक खाने की इच्छा हुई। बिना कौड़ी दिए मोदक नहीं मिल सकता—यह वह जानती थी। अतः भागकर माँ के पास गयी। बोली—"माँ, मुझे कौड़ी दो, मैं मोदक खरीदकर खाऊँगी।"

नागिला मिट्टी की हाँड़ी में शाक-पात बना रही थी। उसके मोदक खाने की बात पर वह जल उठी। दाँत पीसती हुई बोली—"हतभागी, मरती भी नहीं है। तेरा बाप क्या घर में कौड़ी रख गया है जो तू मोदक खरीद कर खाएगी? मोदक खाने जैसा भाग्य है तेरा? यदि मोदक खाने का इतना ही शौक है तो अम्बर तिलक पहाड़ पर जा, वहाँ से लकड़ी संग्रह कर ला और बेचकर कौड़ी उपार्जन कर।"

अग्नि की भाँति माँ का ज्वालामय वाक्य सुनकर निर्नामिका की आँखों से अश्रुधारा बह चली। वह रोती-रोती गोबर उठाने चली गयी।

पुनः दृश्य परिवर्तित हुआ। अब निर्नामिका षोडशी युवती है। यौवन आने पर भी यौवन की लालिमा व माधुर्य उसके शीर्ण कपोलों पर प्रस्फुटित नहीं हुए। उसकी केशराशि रूक्ष और पिंगल वर्णी है। देह है यष्टि-सी। अम्बर तिलक पर्वत से लकड़ी का गट्ठर माथे पर उठाए उतर रही है। पर्वत शिखर पर जाने के मुख्य पथ पर पहुँचते ही उसने देखा—बहुत से

स्त्री-पुरुष उस राह से पर्वत शिखर पर चढ़ रहे हैं। निर्नामिका बहुत देर तक उन्हें देखती रही फिर किसी एक व्यक्ति से पूछा—"भाई, तुम लोग कहाँ जा रहे हो ?"

उसने कहा—"बहन, युगन्धर नामक मुनि ने केवल ज्ञान प्राप्त किया है हम उनका दर्शन वन्दन करने जा रहे हैं।"

निर्नामिका बोली—"भाई, यदि मैं वहाँ जाऊँ तो कोई आपत्ति नहीं है न ?"

"नहीं बहन, आपत्ति कैसी ?"

यह सुनकर निर्नामिका ने सिर का बोझ धरती पर गिरा दिया और उन लोगों का अनुसरण करती हुई पर्वत शिखर पर आरोहण करना आरम्भ कर दिया।

एक विशाल शिलाखण्ड पर केवली युगन्धर बैठे थे। उनकी देह से ज्योति निर्गत हो रही थी। निर्नामिका ने दूर खड़े होकर उनको प्रणाम किया। फिर नीचे बैठकर उनका उपदेश सुनने लगी। वे अमृत निःस्यन्दी वाणी में उपदेश दे रहे थे। वह उपदेश धीरे-धीरे उसके अन्तर में प्रवेश करने लगा। सहस्ररश्मि के किरण जाल से जैसे कमलिनी विकसित होती है उसी प्रकार केवली के उपदेश से उसका हृदय विकसित हो गया। उपदेश के अन्त में वह केवली प्रभु के चरणों में प्रणाम कर बोली—"भगवन्, संसार में मेरे जैसी दुःखिनी शायद और कोई नहीं है। आप मुझे आश्रय दीजिए।"

एक स्मित हास्य केवली प्रभु के अधरों पर फूट पड़ा। वे बोले—"भगिनी, कौन कहता है तुम दुर्भाग्यवती हो ? तुम तो अखण्ड सौभाग्यवती हो। तुम्हारे दुःखों के दिन शेष होने वाले हैं। तुम्हारे मलिन कर्म नष्ट हो गए हैं। तुम इस पर्वत के दूसरी ओर जहाँ सुरभि ह्रद है उसी ह्रद के तट पर जाकर तपस्या करो, तुम्हारे इष्ट की पूर्ति होगी।"

निर्नामिका ने केवली के चरणों में वन्दन कर चलना प्रारम्भ किया। उसे घर का कोई आकर्षण नहीं था अतः जिस पथ से वह आयी थी उसके विपरीत पथ से पहाड़ के दूसरी ओर से वह उतरने लगी।

मेरी आँखों के सम्मुख सुरभि ह्रद फूट पड़ा। यह अच्छोद सरोवर की भाँति ही उत्फुल्ल कुमुद कुवलय और कल्हारों से परिपूर्ण था। विकसित पुण्डरिक के मधु विन्दु जल पर बिखर कर मयूर पुच्छ की चन्द्रिका-सा ह्रदतल को रंगीन बना रहा था। सुगन्धित पद्मों पर अलिगण आच्छादित थे।

पद्म मधुपान मत्त कलहंस वधुओं के कोलाहल से सारा सरोवर मुखरित था। उन्मादी सारसों के कल क्रेंकारों से वायुमण्डल विद्ध हो रहा था। सारा ह्रद इस भाँति सुगन्ध परिपूर्ण था मानों रात्रि बेला में स्नानावतीर्ण वन देवियों के केश लग्न पुष्पों के सौरभ से ही इसके जल में इतनी सुगन्ध फैल रही है निर्नामिका ने ऐसा मनोरम सरोवर इसके पूर्व नहीं देखा था। सुदूर प्रसारित वन पनस का समूह, वन्य बदरी के गुल्म, खदिर वृक्षों के झाड़ एवं तिन्तिड़ी वृक्षों ने सरोवर की शोभा को और बढ़ा रखा था। देखा—निर्नामिका उस सरोवर के तट प्रान्त पर आ खड़ी हुई। ऐसा लगा, मानों उसके उत्कंठित चित्त को उस ह्रद को देखकर विश्राम मिला है। नहीं जानता उसके मन में अच्छोद सरोवर की स्मृति जागृत हुई या नहीं फिर भी दूर पर्यन्त विस्तृत मरकत हरित वनराजि और सुरभित ह्रद की ओर देखते-देखते उसके मन में भाव स्थिर चेतना का स्फुरण हुआ था। मैं उसके मुख की ओर देख रहा था। स्वयंप्रभा के मुख सौन्दर्य के सम्मुख निर्नामिका का मुख सौन्दर्य कुछ भी नहीं था। किन्तु फिर भी उसका रूक्ष मलिन मुख मुझे जैसे आकृष्ट करने लगा। ऐसा क्या इसलिए हुआ कि मैं उससे प्रेम करता था ? जो सुन्दर है वह सभी को सुन्दर लगता है आज तक यही जानता था किन्तु, आज मन इस बात को स्वीकार नहीं कर सका कि सौन्दर्य वस्तु निबद्ध है। उसकी शुष्क चिबुक एवं कण्ठ के हाड़ मुझे आनन्द देने लगे। उसके रूक्ष केश हवा में इधर-उधर उड़ रहे थे, मलिन वस्त्र आन्दोलित हो रहे थे। मैं निर्निमेष उसी को देख रहा था और सोच रहा था प्रेम का प्रभाव कितना असीम है ? यह प्रभाव असुन्दर को सुन्दर और कुत्सित को भी मनोहर कर देता है।

दृढ़धर्मा बोला—"देव, यही यथार्थ समय है। आप इसी समय मृत्युलोक में जाकर निर्नामिका को दिखलाई पड़ें। आपको देखकर आपकी कामना करने पर मृत्यु के पश्चात् पुनः ईशान कल्प के श्रीप्रभ विमान में वह उत्पन्न हो जाएगी।"

मैं तब श्रीप्रभ विमान से मन के रथ द्वारा भूतल पर उतरने लगा। एक कक्ष से दूसरे कक्ष में जाने में जितना समय लगता है उतने ही समय के मध्य में धातकी खण्ड के पूर्व विदेह स्थित सुरभि ह्रद के तट पर आकर उपस्थित हो गया। मुझे देखकर निर्नामिका के नेत्र विस्तृत हो गए। देह में सात्विक परिवर्तन दिखाई पड़ने लगा। नयन बाष्पाकुल हो उठे। उसने बोलने का कुछ प्रयास किया किन्तु बोल नहीं पायी। उसका कण्ठ बाष्परुद्ध हो गया।

मैंने कहा—"स्वयंप्रभा, तुम मुझे नहीं पहचान रही हो ? मैं तुम्हारा ललितांग देव हूँ।"

नहीं जानता निर्नामिका मुझे पहचान सकी या नहीं, किन्तु वह निर्निमेष नेत्रों से मेरी ओर देखने लगी। मेरी ओर देखते हुए उसके पाण्डुर कपोलों पर अनुराग की लालिमा छाने लगी। वाष्पयुक्त नयनों में प्रेम विकार तरंगित हो गया। ललाट मुक्ता से स्वेद विन्दु से भर उठा। वह मेरे मुख से नेत्र हटाकर धीरे-धीरे बोलने लगी—"देव, आप कौन हैं मैं नहीं जानती किन्तु, आपको देखकर लगता है मानो मेरा जन्म-जन्मान्तर कृतार्थ हो गया है। मेरे हृदय की ज्वाला शान्त हो गयी है। अब लग रहा है मेरा जन्म निरर्थक नहीं है। कुछ देर पूर्व ही केवली प्रभु ने जो कहा था—तुम अखण्ड सौभाग्यवती हो उसका अर्थ जैसे मेरे सम्मुख सुस्पष्ट हो उठा है। मैं यहाँ संसार के बन्धनों से मुक्त होने आयी थी। किन्तु अब वह असत्य लग रहा है। आपको देखकर मेरे मन में जो अनुराग जाग्रत हुआ है वह मुझे सत्य और सिद्धि का सोपान लग रहा है"—ऐसा कहकर निर्नामिका रुक गयी। लगा—उसने क्या कहा उसी को अनुधावन करने की चेष्टा कर रही थी। वह निरक्षर ग्रामीण बालिका थी। कैसे वह इतनी प्रगल्भ हो उठी, कैसे उसे भावाभिव्यक्ति की भाषा मिली यही सोचकर वह आश्चर्यान्वित होने के साथ-साथ लज्जा के मारे भी मरी जा रही थी। किन्तु उसके नेत्रों में लज्जा और आग्रह के जो भाव फूट उठे थे उसने मुझे आनन्द दिया। वह फिर धीरे-धीरे बोली—"देव, आप ललितांगदेव हैं यह समझ गयी किन्तु, आपने मुझे जो स्वयंप्रभा कहकर सम्बोधित किया वह नहीं समझ पायी हूँ।"

मैंने कहा—"निर्नामिका, तुम यहाँ धातकीखण्ड के पूर्व विदेह में जन्म ग्रहण करने के पूर्व स्वर्ग के ईशान कल्प के श्रीप्रभ विमान में मेरी पट्ट महादेवी स्वयंप्रभा थी। आयुष्य शेष होने पर वहाँ से च्युत होकर कर्म दोष से दरिद्र नागिल के घर तुमने जन्म ग्रहण किया है। तुम्हारे विरह से कातर होकर तुम्हें पुनः श्रीप्रभ विमान में ले जाने के लिए मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ।"

यह सुनकर निर्नामिका का अनुरागदीप्त मुख और दीप्त हो उठा। वह मेरी ओर सजल नेत्रों से देखती हुई बोली—"देव, मैं कृतार्थ हुई। आपका प्रेम मेरे इस निष्फल जीवन की परम सार्थकता है।"

ऐसा कहकर वह मुझे प्रणाम कर हृद के समीप विशाल बकुल वृक्ष के नीचे जाकर सुखासन में आँखें बन्द कर बैठ गयी। मैं खड़ा-खड़ा उसे देखने

लगा। वह मुझे उस समय पवित्रता की मूर्त्ति, भक्ति की स्रोतस्विनी, श्रद्धा की निर्झरिणी-सी लगने लगी। कुछ क्षण पूर्व ही कमलिनी-पत्र पर शायित निश्चल निस्तब्ध बगुले को देखकर लगा था मानों मरकत पात्र में रक्षित यह शंख सुक्ति है। अब हरित वन्य मध्य बैठी निर्नामिका भी मुझे वैसी ही लगी। वह अविचल उसी ध्यानासन में बैठी रही। समय, मुहूर्त्त, काल उसके चारों ओर झरने लगे। किन्तु उसे किसी ने भी स्पर्श नहीं किया। अयत्न विस्तृत रूक्ष केशराशि के मध्य उसका ईषदार्द्र मुख मण्डल शैवाल वेष्टित सीकर लिप्त नीलोत्पल-सा अभिराम लगने लगा। किन्तु उसकी देह में कहीं भी चैतन्य का स्फुरण नहीं था। मानो उसका समस्त अन्तः स्फुरण अन्य किसी गम्भीर केन्द्र में निमग्न हो गया हो। क्रमशः उसके निःश्वाँस प्रश्वाँस रूद्ध होने लगे....।

कितने दिन कितनी रात्रियाँ इस प्रकार व्यतीत हुईं नहीं जानता। लगा—मैं भी जैसे सम्बीति खो चुका था। सम्बीति लौटते ही जब आकाश की ओर देखा तो पाया समस्त आकाश चाँदनी से इस प्रकार भर उठा था मानो चन्द्रदेव ने सुधा विलेपन चूर्ण का पात्र ही उलटा दिया हो। तारिकाओं की स्तिमित दीप्ति देखकर लगा वे मानों ऊँघ रही हैं एवं किसी भी क्षण लुढ़क कर गिर जाएँगी। ह्रद का जल था निस्तब्ध, निस्तरंग। जल में, थल में, आकाश में कहीं कोई शब्द नहीं था।

* * *

ईशान कल्प का श्रीप्रभ विमान। देखा—मेरे बाहु बन्धनों के मध्य स्वयंप्रभा नींद टूट जाने से जाग्रत हो गयी है। वह अपलक-सी मुझे देखती रही। बोली—"प्रिय, कैसा अद्भुत स्वप्न था!"

मैंने उसे अधिक कुछ कहने का अवसर न देकर अपने आश्लेष में और अधिक निविड़ता से ग्रहण कर लिया।

जीवन स्वप्न के अतिरिक्त है ही क्या?

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

इस प्रकार उत्तम गजेन्द्र पर इन्द्र सपरिवार सामने वाले आसन पर बैठ गए। हस्ती का कुम्भस्थल से उनकी नासिका पर्यन्त आवृत था। हस्ती इन्द्र को सपरिवार लिए वहाँ से रवाना हुआ। ऐसा लगा मानों समग्र सौधर्म देवलोक जैसे उड़ा चला जा रहा था। क्रमशः निज शरीर को छोटा करता हुआ पालक विमान की तरह वह हस्ती क्षण मात्र में उस उद्यान में जा उपस्थित हुआ जिसे भगवान ने पवित्र किया था। अन्यान्य अच्युतादि इन्द्र भी "मैं पहले पहुँचु" इस प्रकार सोचते-सोचते देवताओं सहित अतिशीघ्र वहाँ आ पहुँचे।

उसी समय वायुकुमार देवताओं ने आभिजात्य परित्याग कर समवसरण के लिए एक योजन पृथ्वी परिष्कृत की। मेघकुमार देवताओं ने जमीन पर सुगन्धित जल की वर्षा की। ऐसा लगा मानो प्रभु के आगमन की बात सुनकर पृथ्वी सुगन्धित अश्रुजल से धूप और अर्घ्य उत्क्षिप्त कर रही है। व्यन्तर देवताओं ने भक्ति सहित अपनी आत्मा के अनुरूप उच्च किरण युक्त सुवर्ण माणिक्य और रत्नों की पीठिका निर्मित की। उस पर ऐसे पंचरंगी सुगन्ध-युक्त पुष्प बिछा दिए जिनके डण्ठल नीचे की ओर थे। उन्हें देखकर लगता ये जमीन में ही उगे हैं। चारो ओर सुवर्ण, रत्न एवं माणिक्य के तोरण बनाए। वे उनके कण्ठहार से लगते थे। वहाँ स्थापित रत्नादि निर्मित पुत्तलिकाओं से निर्गत प्रतिबिम्ब अन्य पुत्तलिकाओं पर इस प्रकार पड़ रहा था लगा मानो सखियाँ एक दूसरे का परस्पर आलिंगन कर रही हैं। स्निग्ध नीलमणि रचित मकर का चित्र विनष्ट कामदेव के लक्षण मकर का भ्रम उत्पन्न कर रहा था। वहाँ श्वेत छत्र इस प्रकार शोभा पा रहा था मानो भगवान के केवल ज्ञान से उत्पन्न दिक् समूहों का प्रसन्न हास्य हो। ध्वजाएँ आन्दोलित हो रही थीं: उन्हें देखकर लगता जैसे पृथ्वी महानन्द में नृत्य करने के लिए हस्त उत्तोलित कर रही है। तोरणों के नीचे स्वस्तिकादि अष्टमंगल चित्र अंकित किए गए थे। वे पूजा की वेदी से लगते थे। वैमानिक देवों ने समवसरण के ऊपर का प्रथम प्राकार रत्नों से निर्मित किया। वह प्राकार ऐसा लगता था मानों रत्नगिरि की रत्न मेखला वहाँ लाकर स्थापित कर दी

हो। उस प्राकार के ऊपर मणि निर्मित कंगूरों से निकलती हुई किरण जाल आकाश को विचित्र रंगों के वस्त्रों में परिणत कर रही थी।

मध्य में ज्योतिष्क देवताओं ने सुवर्णमय द्वितीय प्राकार की रचना की। वह प्राकार उनके ज्योतिर्मय देह पिण्ड सा लग रहा था। उस प्राकार पर भी रत्नों के कंगूरे देवों ने निर्मित किए। वे ऐसे लग रहे थे मानों देव और असुर नारियों के मुख देखने के दर्पण हों। भवनपति देवताओं ने वहिर्भाग में रजतमय प्राकार का निर्माण किया। उसे देखकर लगा जैसे भक्ति के लिए वैताढ्य पर्वत मण्डलाकृति बन रहा है। उस प्राकार पर स्वर्णमय कंगूरों का निर्माण किया। वे देवताओं के सरोवर में प्रस्फुटित स्वर्णकमल से लग रहे थे। उन तीन प्राकारों से युक्त भूमि भवनपति, ज्योतिष्क और वैमानिक देवताओं की लक्ष्मी मानों एक गोलाकृत कुण्डल में शोभित हो रही हों ऐसी प्रतीत होती थी। पताका शोभित मणिमय तोरण ऐसे लगते थे मानों स्वकिरणों से भिन्न पताकाएँ आन्दोलित कर रहे हैं। प्रत्येक प्राकार के चार-चार द्वार थे। वे चतुर्विध धर्म की क्रीड़ा करने के निमित्त बने अलिन्द से लग रहे थे। प्रत्येक द्वार के निकट व्यन्तर देवताओं द्वारा रक्षित धूपदान से इन्द्रनीलमणि के स्तम्भ की तरह धूमरेखा विस्तृत कर रहे थे।

उस समवसरण के प्रत्येक द्वार के निकट प्राकार से चार पथ और मध्य में स्वर्ण कमल सरोवर निर्मित किए गये थे। द्वितीय प्राकार के ईशान कोण में प्रभु के विश्राम के लिए वेदिका-सा एक देवछन्द निर्मित किया गया था। भीतर के प्रथम प्राकार के पूर्व द्वार पर दोनों ओर सोने-सी कान्ति वाले दो वैमानिक देव तो द्वारपाल बने खड़े थे। दक्षिण द्वार के दोनों ओर मानो एक दूसरे के प्रतिबिम्ब हो ऐसे उज्ज्वल दो व्यन्तर द्वारपाल बने थे। पश्चिम द्वार पर सन्ध्या के समय चन्द्र सूर्य जैसे आमने-सामने होते हैं उसी प्रकार रक्तवर्ण दो ज्योतिष्क देवता द्वारपाल बने थे। उत्तरी द्वार पर उन्नत मेघ से कृष्णवर्ण दो भवनपति देव दोनों ओर द्वारपाल बनकर स्थित थे।

द्वितीय प्राकार के चारों द्वारों के दोनों ओर क्रमशः अभयपाश, अंकुश और मुद्गल धारण कर श्वेतमणि, शोणमणि, स्वर्णमणि और नीलमणि के सदृश कान्ति सम्पन्न और जैसा कि ऊपर कहा गया है उसी प्रकार चार निकायों की जया, विजया, अजिता, अपराजिता नामक दो-दो देवियाँ प्रतिहारियों की भाँति खड़ी थीं।

शेष बाहर के प्राकार के चारों दरवाजों पर तुम्बरूधारी, खटवांगधारी नृमुण्डमाली और जटामुकुटधारी नामक चार देव प्रतिहारियों के रूप में खड़े थे।

समवसरण के मध्य में तीन कोश दीर्घ चैत्यवृक्ष व्यन्तर देवों ने स्थापित किया जो कि तीन रत्नों (ज्ञान, दर्शन, चारित्र) के उदय से लग रहे थे। उस वृक्ष के नीचे विविध रत्नों की एक पीठिका निर्मित की और उसी पीठिका के ऊपर अनुपम मणियों का छुन्दक स्थापित किया। छुन्दक के मध्य पूर्व दिशा की ओर लक्ष्मी के सार रूप से पादपीठ सहित रत्न सिंहासन स्थापित किया और उस सिंहासन के ऊपर तीन लोक के स्वामीत्व के चिह्न रूप तीन छत्र शोभित थे। सिंहासन के दोनों ओर दो यक्ष चँवर लिए खड़े थे। चँवर ऐसे लग रहे थे मानों हृदय में समस्त भक्ति धारण न कर सकने के कारण वह बाहर निकल आयी है एवं दोनों चँवर उसके समूह हैं। समवसरण के चारों द्वार पर अलौकिक कान्तिमय धर्मचक्र स्वर्ण कमल पर रखा हुआ था। अन्य जो कुछ करणीय था व्यन्तर देवताओं ने वे समस्त कार्य किए कारण साधारणतः समवसरण के अधिकारी वही होते हैं।

प्रभात के समय चार निकाय के कोटि-कोटि देवताओं के साथ प्रभु समवसरण में प्रवेश करने चले। उस समय देवतागण हजार-हजार पंखुड़ियों वाले नौ स्वर्ण कमल बनाकर प्रभु के सम्मुख रखने लगे। उनमें दो पर प्रभु चरण रखने लगे और देव जैसे ही प्रभु के चरण अग्रवर्ती कमल पर पड़ते वैसे ही पीछे के कमल आगे रख देते। जगत्पति ने पूर्व द्वार से समवसरण में प्रवेश कर चैत्य वृक्ष की प्रदक्षिणा दी। फिर तीर्थ को नमस्कार कर सूर्य जैसे पूर्वांचल पर आरूढ़ होता है उसी प्रकार जगत के मोह रूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए पूर्वाभिमुखी सिंहासन पर आरूढ़ हुए। उस समय व्यन्तर देवताओं ने अन्य तीन दिशाओं में सिंहासन पर प्रभु की रत्नमय तीन प्रतिमाएँ स्थापित कीं। यद्यपि देवतागण प्रभु के अंगुष्ठ की प्रतिकृति भी यथायोग्य बनाने में समर्थ नहीं थे फिरभी प्रभुके प्रताप से प्रभुकी प्रतिमा यथायोग्य निर्मित हो गयी। प्रभु के मस्तक के चारों ओर भामण्डल प्रकट हुआ। उस मण्डल की द्युति के सम्मुख सूर्य मण्डल की द्युति खद्योत-सी लगने लगी। मेघ सी गम्भीर शब्दकारी देव दुन्दुभि बजने लगी। उसकी प्रतिध्वनि से चारों दिशाएँ शब्दायमान हो गयीं। प्रभु के निकट एक रत्नमय ध्वजा थी वह ऐसी सुशोभित हो रही थी मानों धर्म पृथ्वी के ये ही एकमात्र प्रभु हैं ऐसा संकेत करने के लिए अपना एक हाथ उत्तोलित कर रही है।

फिर विमानपति देवों की देवियाँ पूर्वद्वार से आयीं। वे उन्हें तीन प्रदक्षिणा देकर तीर्थ और तीर्थंकर को नमस्कार कर प्रथम प्राकार में साधु साध्वियों के लिए स्थान रखकर अपने स्थान के अग्निकोण में खड़ी हो गयीं।

भुवनपति ज्योतिष्क और व्यंतर देवों की देवियाँ दक्षिण दिशा के द्वार से प्रवेश कर और पूर्व विधि का पालन कर क्रमशः विमानपति देवों की भाँति नैऋत्य कोण में जाकर खड़ी हो गयीं। भवनपति, ज्योतिष्क और व्यंतर देवतागण पश्चिम दिशा के द्वार से प्रवेश कर उपर्युक्त विधि का पालन कर वायव्य कोण में जाकर बैठ गए। वैमानिक देव और मनुष्य स्त्री पुरुष उत्तर दिशा के द्वार से प्रवेश कर पूर्व विधि के अनुसार ईशान कोण में जाकर बैठ गए। वहाँ पहले आने वाले अल्पऋद्धि सम्पन्न, पीछे आने वाले अधिक ऋद्धि सम्पन्न को नमस्कार करते और पीछे आने वाले आगे आने वाले को नमस्कार करके आगे चले जाते। प्रभु के समवसरण में किसी का भी आना निषेध नहीं था। वहाँ विकथा नहीं थी, विरोधियों के मध्य विरोध नहीं था और किसी का भय नहीं था। द्वितीय प्राकार में तीर्यंच प्राणी आकर बैठ गए और तृतीय प्राकार में सबके वाहन रह गए। तृतीय प्राकार के वहिर्देश में तीर्यंच, मनुष्य और देवता आते-जाते दिखाई पड़ रहे थे।

इस प्रकार समवसरण रचित होने के पश्चात् सौधर्म कल्प के इन्द्र हाथ जोड़कर प्रभु को नमस्कार कर रोमांचित बने इस प्रकार स्तुति करने लगे : "हे स्वामी, कहाँ आप गुणों के पर्वत, कहाँ मैं बुद्धि का दरिद्र, फिर भी आप की भक्ति ने मुझे अत्यन्त वाचाल बना दिया है अतः मैं आपकी स्तुति करता हूँ। हे जगत्पति, जिस प्रकार रत्नों से रत्नाकर शोभित होता है उसी प्रकार आप अनन्त ज्ञान दर्शन वीर्य और आनन्द से शोभित हैं। हे देव, इस भरत क्षेत्र में बहुत दिन हुए धर्म नष्ट हो गया है। आप उस धर्म रूपी वृक्ष को पुनः उत्पन्न करने के लिए बीज सम बनिए। हे प्रभु, आपके माहात्म्य की सीमा नहीं है कारण स्वस्थान में रहे हुए ही आप अनुत्तर विमान के देवताओं के सन्देह का निवारण कर सकते हैं। महान् ऋद्धि सम्पन्न और कान्ति से प्रकाशमान इन सब देवताओं को स्वर्ग में रहने का जो सौभाग्य प्राप्त हुआ है वह तो आपकी भक्ति का सामान्य फल है।

"मूर्खों का ग्रन्थ अध्ययन जिस प्रकार दुःख का कारण होता है उसी प्रकार जिस मनुष्य के मन में आपकी भक्ति नहीं उसकी बड़ी-बड़ी तपस्या भी काय-क्लेश का कारण ही बनती है। हे प्रभु, स्तुति करनेवाले और निन्दा करनेवाले दोनों पर ही आप समभाव रखते हैं किन्तु आश्चर्य यह है कि दोनों को शुभ और अशुभ फल पृथक-पृथक मिलता है। हे प्रभो, मैं स्वर्ग की लक्ष्मी से सन्तुष्ट नहीं हूँ। इसलिए मैं प्रार्थना करता हूँ मेरे हृदय में आपकी अक्षय और

अपार भक्ति हो। इस प्रकार स्तुति कर पुनः नमस्कार कर इन्द्र नर-नारी और देवताओं के आगे प्रभु के सन्मुख हाथ जोड़कर बैठ गया।

उधर अयोध्या नगर में भरत चक्रवर्ती सुबह होते ही माता मरुदेवी को नमस्कार करने गए। अपने पुत्र के वियोग में रात-दिन रोते रहने के कारण उनके नेत्रों में एक व्याधि हो गयी थी फलतः उनकी दृष्टि चली गयी थी। एतदर्थ "आपका बड़ा पौत्र आपके चरणों में नमस्कार करता है" ऐसा कहकर भरत ने उनके चरण वन्दन किए। स्वामिनी मरुदेवी ने भरत को आशीर्वाद दिया। फिर मानों हृदय में शोक वहन नहीं कर पा रहीं हों इस प्रकार बोलने लगी—"वत्स, मेरा पुत्र ऋषभ मुझे, तुम्हें, प्रजावृन्द को, लक्ष्मी को एवं राज्य को तृणवत् परित्याग कर चला गया तब भी इस मरुदेवी की मृत्यु नहीं हुई। जिस मेरे पुत्र के मस्तक पर चन्द्र की चन्द्रिका की तरह छत्र रहता था वह अभी कहाँ है? छत्र विरहित होने के कारण उसके समस्त अंग को सन्तापदानकारी सूर्य किरण निश्चय ही पीड़ित कर रही होगी। पहले तो वह श्रेष्ठ हस्ती आदि वाहन पर आरूढ़ होकर निकलता था अब पथचारी पथिक की भाँति पैदल चलता होगा। पहले उसकी देह पर वारांगनाएँ चमर वीजती थीं अब वह दंश मशकादि की पीड़ा सहन करता होगा। पहले वह देवों द्वारा लाया हुआ दिव्य आहार ग्रहण करता था और आज अभाजन की तरह भिक्षा भोजन ग्रहण करता है। पहले वह महान् ऋद्धिसम्पन्न रत्न सिंहासन पर बैठता था आज गैण्डे की तरह बिना आसन के ही बैठता होगा। पहले वह नगर रक्षक और शरीर रक्षकों से रक्षित होकर नगर में रहता था अब तो वह सिंहादि पशुओं से पूर्ण वन में वास करता होगा। दिव्यांगनाओं के अमृततुल्य गीत श्रवणकारी उसके कर्ण सूचिविषकारी सर्पों की फुफ्कार सुनते होंगे। कहाँ उसकी पूर्व स्थिति और कहाँ आज की वर्तमान स्थिति! हाय! मेरे पुत्र ने कितना दुःख सहन किया है। वह कमल तुल्य कोमल था। आज वर्षा के उपद्रवों को सहन करता है। अरण्य की मालती लता की तरह हेमन्त का हिमपात उसे विवश होकर सहन करना होता है। ग्रीष्मकाल में बनवासी हस्ती की तरह सूर्य की अति दारूण किरण जालों का कष्ट सहन करता होगा। इस प्रकार मेरा पुत्र वनवासी होकर आश्रयहीन साधारण मनुष्य की तरह अकेला प्रव्रजन करता है, दुःख सहन करता है। मेरे ऐसे दुःख पीड़ित पुत्र को मानों मेरी आँखों के सम्मुख ही हो इस प्रकार देखती रहती हूँ और तुम्हें भी सर्वदा ये सब बातें सुनाकर दुःखित करती रहती हूँ।"

[क्रमशः

अर्द्ध कथानक

बनारसी दास

[पूर्वानुवृत्ति]

वह जबर्दस्ती करने लगा, मैं भी प्रत्याख्यान नहीं कर सका। उस दिन से वह मुझे भाई कहकर पुकारने लगा एवं वैसा ही व्यवहार करने लगा। हम दोनों अभिन्न हो गए।

एक दिन नरोत्तमदास जब ताराचन्द्र मोथिया के यहाँ गया तो उन्होंने उसे कुछ काम दिया। उसकी ओर से मुझे और नरोत्तम को पटना जाना पड़ा। उन्होंने हमें कुछ रुपये दिए और हम यात्रा के लिए उद्यत होने लगे। फिर एक शुभदिन यात्रा पर जाने के पूर्व जो-जो करणीय था वह सब कर ललाट पर टीका लगाकर यमुना नदी अतिक्रम की।

हम तीन थे। नरोत्तम, मैं और नरोत्तम के श्वसुर। तीनों ही सक्षम और श्रीमाल वंशीय थे। हमने गाड़ी तो भाड़े की ली किन्तु कोई पाईक नहीं लिया।

हमने फिरोजाबाद में गाड़ी भाड़े की ली जो हमें शाहजादपुर तक ले गयी। शाहजादपुर फिरोजाबाद और पटना के मध्य था। हम जब शाहजादपुर पहुँचे तब भाड़ा चुकाकर बाकी रास्ता एक कुली करके पैदल ही तय करना स्थिर किया।

सुबह जितनी जल्दी हो सकेगा निकल पड़ेंगे निश्चित किया। लेकिन उस रात सूर्यास्त के पाँच घण्टे पश्चात् चन्द्रालोक इतना प्रखर हुआ कि लगा सूर्योदय में अधिक देरी नहीं है। अतः हम उसी समय निकल पड़े। किन्तु प्रकाश पर्याप्त न होने के कारण रास्ता स्थिर नहीं कर पाए और दक्षिण की ओर जाकर एक घने वन में प्रवेश कर गए। कुछ दूर जाने पर हमें पता लगा कि हम गहन वन में खो गए हैं। हमारा कुली सहसा हत्बुद्धि-सा चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा। वह अपने माथे का बोझ पटक कर अरण्य में गुम हो गया। अब उस बोझ को हमें वहन करने के सिवाय कोई चारा नहीं रहा। हम तीनों ने उसे तीन भागों में विभक्त कर अपना-अपना बोझ उठाया लेकिन रास्ता चलना मुश्किल हो गया। बोझ सिर से कन्धों पर, कन्धों से सिर पर रखते हुए कष्ट कम करने की चेष्टा की। पर कष्ट कम

नहीं हुआ। उस समय आधी रात थी। हम तो न घर के रहे न घाट के। थकावट से हम चूर-चूर हो गए थे अतः पागलों की तरह एक साथ रोने-गाने लगे।

कुछ देर पश्चात् ही हम वहाँ पहुँच गए जहाँ डकैतों का अड्डा था। हमें देखकर एक आदमी चिल्लाकर बोला —"कौन है वहाँ ?" उस कण्ठस्वर को सुनकर हमारी तो देह ही ठण्डी हो गयी, कण्ठ अवरुद्ध और वाक्‌शक्ति हीन। अतः हम उसके किसी प्रश्न का उत्तर नहीं दे सके। केवल मन ही मन भगवान को याद करने लगे।

वह आदमी हमारे पास आया। वह डाकुओं का सरदार था। उसे देखकर न जाने कैसे तो मेरे मन में एक समयानुकूल प्रेरणा जाग पड़ी। ब्राह्मणों की तरह हाथ उठाकर आशीर्वाद देने की भंगिमा में मैंने एक संस्कृत श्लोक उच्चारित किया। मेरी युक्ति सार्थक हुई। डाकुओं के सरदार ने हमें वेदज्ञ पण्डित समझकर पैर छूकर प्रणाम किया और रात भर के लिए आश्रय देने को भी प्रस्तुत हो गया।

वह बोला—"महाराज, मैं आपका दासानुदास हूँ। मेरे साथ आइए। मैं आपलोगों को मेरे गाँव ले जाऊँगा। वहाँ चौपाले में रात काट लीजिएगा। मुझसे डरिये मत। भगवान साक्षी हैं मैं आपलोगों का कोई अनिष्ट नहीं करूँगा।"

हमने बिना कुछ कहे डकैतों के सरदार का अनुसरण किया। उसने अपने कथनानुसार रात भर के लिए हमें आश्रय दिया।

लेकिन हम फिर भी भय से काँप रहे थे। छाती धक्-धक् कर रही थी। मुँह सफेद शान्त शून्य हो गया था। हमे अकेला छोड़कर जब वह डकैत सरदार चला गया तब हमने शीघ्रतापूर्वक सूता निकाला और उससे चार जनेऊ तैयार किए। कारण ब्राह्मणों को जनेऊ अवश्य पहनना पड़ता है। तीन जनेऊ हम तीनों ने धारण किए। चौथा बाहर रखा ताकि सब उसे देख सके। फिर कुछ मिट्टी लाए और पास के किसी जलाशय से जल लाकर उससे ललाट पर बड़ा-सा तिलक बनाया। इस भाँति छद्‌म वेष धारण कर सुबह की प्रतीक्षा करने लगे। किन्तु हमारा भय तब भी खतम नहीं हुआ था अतः जरा भी नींद नहीं आयी। केवल सिमट कर पड़े हुए रात के छः घण्टे बिताए। क्रमशः सुबह का आलोक फूट पड़ा। उदीयमान सूर्य ने मेघ को भी लाल रंग से रंजित कर डाला।

बीस अनुचरों के साथ तभी वह डाकू सरदार हमारे पास आया और हाथ

जोड़कर नमस्कार किया। मैने उसे आशीर्वाद देते हुए एक संस्कृत श्लोक पढ़ा।

तब डाकू सरदार बोला—"महाराज, इसबार हमारे साथ आइए। मैं आपको अरण्य में राह बता दूँ।"

हम अपना बोझ पीठ पर लेकर उसके पीछे-पीछे चले। हमलोगों का अनिष्ट करे ऐसा कोई भाव उसमें नहीं पाया। वह एक संकरे रास्ते से आगे चलने लगा। तीन कोस पैदल चलने के पश्चात् हम सब फतेपुर के रास्ते पर आए।

रास्ता दिखाकर वह डाकू सरदार बोला—"यह पथ आपको गन्तव्य स्थल पर ले जाएगा।" फिर दूर की घनी वृक्षराजि को दिखलाते हुए बोला, "उन वृक्षों के उस पार फतेपुर है।"

फिर उसने हमसे विदा ली। हमने भी हृदय से उसे दीर्घजीवी होने का आशीर्वाद दिया और फतेपुर के पथ पर चल पड़े।

शीघ्र ही दूर से लखराऊँ शहर दिखाई पड़ने लगा। वह वहाँ से दो कोस दूर था। लखराऊँ से फतेपुर और दो कोस था। इलाहाबाद वहाँ से दो कोस था। वहाँ जाने के लिए हमने दो कुली किए। इलाहाबाद में कुछ विश्राम करेंगें सोचकर हमारा माल सराय में रखकर घाट पर गए। वहाँ खाना-पीना किया।

पिताजी से मिलने के लिए मैं अकेला ही वहाँ से शहर गया। बहुत दिनों पर उनसे मिलना होगा सोचकर मन आनन्द से भरा था। उन्हें देखते ही मैं दौड़कर गया और उनके चरणों में प्रणाम किया। उन्होंने भी प्रेम से मुझे छाती से लगा लिया। फिर वे मुझे एकान्त में ले गए और मेरी आर्थिक स्थिति कैसी चल रही है पूछा। मेरी सब बातें सुनकर वे ऐसे मृतप्राय हो गए कि बेहोश होकर गिर पड़े। उनसे मिलने का आनन्द उनके स्वास्थ्य की चिन्ता में परिवर्तित हो गया।

एक घण्टे से भी अधिक वे इसी अवस्था में रहे। फिर धीरे-धीरे संज्ञा लौटी और वे स्वस्थ हो गए।

वहाँ से हमलोगों ने जौनपुर जाना तय किया एवं पिताजी भी हमारे साथ हो गए। उनके लिए एक पालकी की और हम सब पैदल ही चले। गंगा पारकर हम सब शीघ्र ही जौनपुर पहुँचे। वहाँ से फिर मैं और नरोत्तम बनारस चले गए। इच्छा थी वहाँ जाकर व्यवसाय करें।

बनारस पहुँचते ही सर्वप्रथम हमने भगवान पार्श्वनाथ के मन्दिर में जाकर उनका दर्शन किया। भगवान की प्रतिमा के सम्मुख खड़े होकर उन विषयों

से विरत होने की प्रतिज्ञा की जो हमें स्वभावतः अच्छे लगते हैं। हमने जो प्रतिज्ञाएँ लीं, वे ये थीं :

सन्ध्या के बाद और सूर्योदय होने के एक घण्टे के मध्य आहार ग्रहण नहीं करूँगा।

आधा पैसा दान देने के लिए अलग रखूँगा।

दिनभर में नवकार मन्त्र की एक माला फेरूँगा।

यदि किसी दिन इन प्रतिज्ञाओं का पालन नहीं हो सका तो प्रायश्चित रूप में दूसरे दिन घी नहीं खाऊँगा।

प्रति चतुर्दशी को उपवास करूँगा।

पचास प्रकार की हरी सब्जियों का त्याग करूँगा।

विदेश में भी यथा सम्भव इन सब नियमों का पालन करूँगा।

दो बार से अधिक विवाह नहीं करूँगा।

कभी पराई स्त्री का संसर्ग नहीं करूँगा।

भगवान पार्श्व को साक्षी रखकर मैंने और नरोत्तम ने श्रद्धा सहित इन व्रतों को ग्रहण किया। जब मैं अपने आवास स्थल को लौटा तो एक नवीन स्फूर्त्ति अनुभव की। मानों—हम अमूल्य धन के अधिकारी बन गए हैं। तदुपरान्त हमने खाना खाकर पान खाया।

यह घटना विक्रम संवत १६७१ के वैशाख मास के शुक्ल पक्ष को घटी थी।

बनारस में हमारी प्रचेष्टा फलवती हुई। व्यवसाय जमने लगा। हम भी अपने कार्य में जुटे रहे। इसी बीच पिताजी की एक चिट्ठी मिली। उसमें मेरी पत्नी की मृत्यु का दुःखद समाचार था। मेरी पत्नी अपनी मैके में ही थी। वह आसन्न-प्रसवा थी। उसके एक लड़का हुआ। लड़का होने पर वह बहुत प्रसन्न भी हुई। किन्तु पन्द्रह दिनों के मध्य ही माँ और बेटा दोनों की ही मृत्यु हो गयी।

इस दुःसंवाद के साथ-साथ पिताजी ने यह भी लिखा था कि मेरे श्वसुर ने विचार कर अपनी दूसरी कन्या का विवाह मेरे साथ करना स्थिर किया है। स्थिर ही नहीं किया विवाह के प्रस्ताव रूप में नारियल सहित लड़की को भी नाई के साथ मेरे घर जौनपुर भेज दिया है। मेरे पिताजी ने भी एक शुभ दिन वह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है।

कुम्हार की संडासी जिस प्रकार एक बार अग्नि में एवं एक बार जल

में जाती है उसी प्रकार चिट्ठी पाकर मेरी अवस्था भी आनन्द और वेदना से वैसी ही हो गयी।

पत्र पढ़कर मैं रोने लगा। नरोत्तम भी मेरे साथ ही रो पड़ा। किन्तु मैंने मन को शीघ्र ही पाषाण बना लिया।

अपने व्यवसाय को और सुदृढ़ बनाने के लिए मै और नरोत्तम काम में एकदम निमग्न हो गए। हम चुन्नी, माणक, मोती आदि क्रय-विक्रय करने लगे। क्रमशः हमारा व्यवसाय बढ़ने लगा। हम दिन रात परिश्रम करते, जरा भी विश्राम नहीं करते। यहाँ तक कि दोपहर का खाना भी एक साथ शाम को ही खाते। हम दोनों एक साथ कार्य करने के आनन्द से भी वंचित रहते। कारण हममें से एक को जौनपुर जाना होता तो दूसरे को बनारस रहना पड़ता। बनारस रहने पर भी हम कार्य विभाजित कर विभिन्न मुहल्लों में घूमते रहते। फलतः समस्त दिन एक दूसरे से मिल नहीं पाते।

प्रायः छः महीने तक यही अवस्था रही। इन दिनों हम घोड़े की तरह दौड़ते रहते। फिर श्वाँस लेने का समय मिला। जौनपुर के नवाब अमीर चीनी किलिज खान मेरी ओर आकृष्ट हुए और सदय व्यवहार करने लगे। चीनी किलिज वृद्ध किलिज खान के पुत्र थे और बादशाह के दरबार में चार हजारी मनसवदार थे। वे विद्वान व्यक्ति थे साथ ही साहसी और उदार भी। उन्होंने मुझे बुलवाया और अपने दाक्षिण्य के अभिव्यंजक रूप में सिरोपा दी। उनके साथ मेरा सम्बन्ध अद्भुत और आश्चर्यजनक था। वे मेरे प्रति सहृदयी थे और मैंने भी उन्हें प्रियबन्धु के रूप में ग्रहण किया था। हमारा वह सम्बन्ध आँधी तूफान के मध्य भी बहुत दिन स्थिर रहा।

उसी समय एक आदमी था जिसका नाम मैं नहीं बताऊँगा मेरे प्रति द्वेष भावापन्न था। मुझसे उसकी शत्रुता इतनी अधिक थी कि लगा वह एक जन्म की नहीं कई कई जन्मों की थी। उसने मुझे बहुत दुःख दिया। मैं उसका विशद् वर्णन देकर आपलोगों के हृदय को बोझिल बनाना नहीं चाहता फिर भी इतना अवश्य कहूँगा कि उसने मेरे साथ जैसा व्यवहार किया वैसा कोई किसी के प्रति नहीं करे।

बहुत दिनों तक इस आदमी ने मुझे और नरोत्तम को कष्ट दिया। उसने हमलोगों को किसी प्रकार भी सुख से नहीं रहने दिया। उसने हमारा जीवन ही असह्य कर दिया।। यहाँ तक कि जाल फरेब करके हमसे रुपए भी लेने लगा। कुछ समय के लिए वह किलिज को भी मेरे विरुद्ध करने में समर्थ हो गया।

इस प्रकार दो मास व्यतीत हुए। किलिज खान एक युद्ध में गए। जिस छोटे दुर्ग को उन्होंने घेरा था उसे जय कर लौट आए। जब वे लौट कर आए तब बिल्कुल ही बदल गए थे। मेरे प्रति वे पुनः सहृदय हुए। मुझ से उन्होंने तीन ग्रन्थ पढ़े—नाममाला, छन्दकोष, श्रुतबोध। इसके बाद मेरे प्रति सहृदय ही रहे। कभी भी द्वेष भाव नहीं दिखाया।

इससे मेरा वह शत्रु भयभीत हुआ यद्यपि उसे भयभीत करने के लिए मैंने तो न कुछ किया था न बोला ही था। उसने परस्पर मध्यस्थता करने के लिए चार लोगों को बुलवाया। हमारा झगड़ा किसी प्रकार मिटा। इससे मैं बहुत प्रसन्न हुआ। कारण मुक्तिप्राप्त पक्षी की तरह मैं तब स्वयं को स्वतन्त्र समझने लगा।

सम्वत् १६७२ में चीनी किलिज खान की मृत्यु हो गयी। अच्छे व्यवसाय की आशा में मैं और नरोत्तम पटना गए। पटने में हम छः महीने से भी अधिक रहे। लेकिन जैसा हमने सोचा था वैसा व्यवसाय जमा नहीं। छोटे-मोटे सौदे के लिए भी हमको कठिन परिश्रम करना पड़ता। अन्ततः हम पटना से लौट आए।

मैं जौनपुर में रहने लगा। वहाँ मेरा व्यवसाय अच्छा जमने लगा। किन्तु मैं आपलोगों को बताऊँगा नहीं कि वह कैसे जमा। कारण प्राचीन सूक्ति में कहा गया है :

स्वयं के विषय में नौ बातें नहीं कहनी चाहिये : उम्र, धन, स्त्री सम्बन्धी बातें, घर की बात, दान, मान, अपमान, दवा और मंत्र।

अपने धन की बात नहीं बतानी चाहिए अतः मैं भी इस विषय में कुछ नहीं बताऊँगा।

इस प्रकार बाद में दो वर्ष तक जौनपुर, बनारस, पटना में व्यवसाय किया। फिर मेरे दुर्योग के बादल घिर आए। इसबार वह बादल आघानूर के रूप में आया। बादशाह ने इस दुर्दान्त अमीर को बुलवाया, सिरोपा देकर सम्मानित किया और एक घृण्य काम के लिए हमारे अंचलमें भेज दिया। उसके आने के संवाद से चारों ओर आतंक व्याप्त हो गया। घर-बार छोड़कर लोग भागने लगे। मैं और नरोत्तम तब जौनपुर में नहीं थे। हम जौनपुर लौटे, परिवार को छिपा दिया और फिर उत्तर की ओर भाग गए। हाथ में मोटी लाठी लेकर हम राह पर चले।

[क्रमशः

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

अमर भारती || फरवरी १९८३

उपाध्याय श्री अमर मुनि के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'जैनागमों का सांस्कृतिक महत्व' (अगर चन्द नाहटा), 'बन्धन और मुक्ति' (डा० सागरमल जैन) ।

कुशल निर्देश || फरवरी १९८३

इस अंक में है 'श्री सहजानन्दघनजी महाराज द्वारा गणिवर्य श्री बुद्धि मुनिजी को दिए गए पत्र' (अनु० भँवरलाल नाहटा), 'पन्यास जी कहते थे' (अनु० भँवरलाल नाहटा), 'युगपुरुष श्रीमद् देवचन्द्र' (राजेन्द्र कुमार चौरड़िया) ।

तीर्थंकर || जनवरी-फरवरी १९८३

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'खुशियों से भरें अपनी झोली' (डा० कुन्तल गोयल), 'क्या यह तपस्या है' (मुनि सुखलाल), 'संकल्प का कोई विकल्प नहीं' (अभिलाष कुमार), 'एक कथा जो कभी मरेगी नहीं' (नेमीचन्द पटोदिया), 'भेद-विज्ञान, स्वानुभूति, मुक्ति' (बातचीत चम्पा बेन/डा० नेमीचन्द जैन), 'अन्तिम पृष्ठ : चिन्तन के रूप में खत' (गणेश ललवानी) ।

श्रमण || फरवरी १८६३

इस अंक में है 'धर्म क्या है ?' (डा० सागरमल जैन), 'जैन धर्म में अरिहन्त और तीर्थंकर की अवधारणा' (रमेश चन्द्र गुप्त), 'जैन दृष्टि में चारित्र' (डा० श्री रंजन सूरिदेव) ।

Vol. VI No 11 : Titthayara : March 1983
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

B -

Hewlett's Mixture
for
Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) PVT. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700001